शोध मंथन, Impact Factor 5.463 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X,
88 Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com/* https://doi.org/10.31995/shodhmanthan

दलित मानवाधिकार के मुद्दे

डॉ शिवानी

सहायक प्रवक्ता, डी0ए0वी0शताब्दी कॉलिज, फरीदाबाद

ई–मेल shivanitanwar1973@gmail.com

सारांश

डॉ0 अम्बेडकर ने अस्पृश्यता के बारे में गहन अध्ययन किया था। भारतीय समाज व्यवस्था की अस्पृश्यता एक अमानीवय समस्या है। बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार ''हिन्दुओं की अस्पृश्यता एक विचित्र तथा संसार के पीठ पर अन्य किसी भी भाग की मानवता से अपरिचित हैं। आर्थिक राजनैतिक, शैक्षिक, धार्मिक तथा साहित्यिक ये सभी अंग जीवन के अर्थात् समाज जीवन के अंग हैं। जीवन के इस प्रत्येक भाग में पैदा हुआ शब्द अंत तक मनुष्य के अधिकारिक उन्नत रूप का ही विचार करता है। संसार की लगभग सभी समाज व्यवस्थाओं का अध्ययन करके अस्पृश्यता के सम्बन्ध में उन्होंने राजनीति दृष्टि से विचार प्रस्तुत किया।

प्रस्तावना

अस्पृश्यता

वर्ण व्यवस्था के बल एक धारणा ही नहीं है, बल्कि यह उन लोगों के व्यवहारों को भी प्रभावित करती है मुख्यतः उन लोगों के जो इन विचारधाराओं पर विश्वास रखते हैं। इस प्रकार का व्यवहार समाज में कुछ वर्गों में ही देखा जाता है। (फ्राकों और सरवर 1989) गरिमा एवं आत्मसम्मान प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रिय हैं तथा ये दूसरे लोगों से पारस्पारिक क्रिया के दौरान प्रसारित तथा विस्तारित होते हैं। दलितों को शोषित किया जाता है। साथ ही साथ उनके कल्याण के लिए जरूरी मूल आवश्यकताओं से उन्हें वांछित भी किया जाता है। क्या यह मानवीय गरिमा हैं? ''गाँव या शहर में हर स्थान पर अस्पृश्यता की प्रथा किसी न किसी रूप में प्रचलित हैं। अय्यर (2002) कहना सही हैं कि जाति प्रथा ने समुदाएँ को विभाजित किया है। ''स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि ''दलित एवं महिलाओं को समान रूप से गदें वातावरण में रखा गया हैं ''। यही क्रूरता तथा यही चक्र एक जगह से दूसरी जगह तथा एक एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में विचरण करता हैं। हमें इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि केवल अशिक्षित लोग ही अस्पृश्यता को मानते हैं, बल्कि मैं घन्यवाद् करना चाहूँगा ऐसी शैक्षिक प्रक्रिया तथा विषयों का, जिसमें शिक्षित वर्ग इस जहर को ज़्यादा उगलता हैं। स्वाभाविक हैं इसमें शिकार दलित वर्ग के लोग ही हैं। दलितों के साथ घर तथा मौहल्ले जैसे निज़ी स्थानों में ही अभ्रद व्यवहार नहीं किया जाता। बल्कि पंचायत जैसे स्कूल, अस्पताल, नाई की दुकान, चाय की दुकान, बसों आदि में भी

यही हालत हैं। इन सार्वजनिक स्थानों में दलितों की उपस्थिति को यानि अशुभ माना जाता है। यदि वे उत्तम व्यवहार भी अपनायें हैं। तो उच्च हिन्दू जातियों द्वारा दलितों पर हिसंक मारपीट करना तो सामान्य बात हैं।

अस्पृश्यता का स्वरूप

सामायित विषमता के बल हिन्दुओं तक ही सीमित नहीं है बल्कि विषमताओं अन्य राष्ट्रों में भी हैं। उच्च वर्णीय, कनिष्ठ वर्णीय, मुक्त बंधक, आदरणीय तिरस्कृत ऐसे दो भागों में समाज का विभाजन हुआ हैं ऐसा डॉ0 अम्बेडकर स्पष्ट करते हैं।

धर्म के आधार पर गुलामगिरी के उदाहरणों की इतिहास में कमी नहीं है। उसमें से प्रमुख उदाहरण 'ज्यू' पारसी लोगों का हैं। ईसा मसीह की मृत्यु के लिए 'ज्यू' लोग जिम्मेदार हैं। ऐसा समझा जाता हैं इसीलिए उन्हें परेशान किया जाता था। मध्यकाल में लगभग सभी यूरोपियन गांवों में ज्यू लोगों को गांव के पास सीमित स्थान पर रहने को बाध्य किया गया था। ज्यू लोगों को बस्ती को 'धेटो' कहा जाता था। भारत में भी अस्पृथ्य लोगों की बस्तियां गांव के बाहर हैं। इन बस्तियों को (महारबाड़ा) 'मांगबाड़ा, चामरोट्टी, रबाटकाना' कहा जाता था। ज्यूं तथा अस्पृथ्यों के प्रश्न का स्वरूप एक समान था, फिर भी दोनों में मौलिक अंतर हैं। ज्यू लोगों को ईसाई समाज से अलग अस्तिष्क रखता था। इसीलिए ज्यू लोगों ने स्वेच्छा से अलिप्त रहना स्वीकार कर लिया था। किन्तु अस्पृथ्यों को बलपूर्वक हिन्दू समाज से दूर रखा गया था। अस्पृश्यता एक दंड हैं। स्वंय की मर्जी से किसी ने अस्पृश्यता को स्वीकार नहीं किया। ऐसे विचार डॉ0 अम्बेडकर प्रस्तुत करते हैं।

डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार, '' भारतीय गांव समाज धटक नहीं है। उसमें जातियों का समावेश है। डॉ0 अम्बेडकर ने गांवों के सन्दर्भ में निम्नलिखित बाते बतलाई हैः

01 ग्रामीण जनसंख्या दो गुटों में विभक्त की गयी है एक स्पृथ्य दूसरी अस्पृश्य।

02 स्पृश्य बहुसंख्यक थे तो अस्पृश्य अल्पसंख्यक समाज हैं।

03 स्पृश्य लोग गांव में रहते हैं और अस्पृश्य गांव के बाहर स्वतन्त्र बस्तियों में।

04 आर्थिक दृष्टि से स्पृथ्य बलवान तथा जामृर्यशील है, तो अस्पृश्य गरीब तथा परालम्बी हैं।

05 सामाजिक दृष्टि से स्पृथ्यों से सत्ता की स्पर्धा में स्थान प्राप्त किया है तो अस्पृथ्यों को बंधुआ मज़दूर की सी स्थिति स्वीकार करनी पड़ी।

मूलभूत नागरिक आवश्यकताएं

राज्य के भी कुछ अपने अधिकार तथा उत्तरदायित्व होते हैं। नागरिकों की आवश्यकताओं के आधार पर संविधान के अनुसार नीतियां एवं कानून बनते हैं। नागरिकों की मूलभूत आवश्यकताएं जैसे पानी, बिजली, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधा, यातायात एवं भांति–भांति के साधर मुहैय्या कराना भी राज्य की जिम्मेदारियां हैं। फिर भी भारत में दलित समाज का बहुत बड़ा भाग इन सुविधाओं से वंचित है। दलितों का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अस्तित्व देश की

सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था पर आधारित है। लेकिन ये सारी व्यवस्थाएं किसी न किसी रूप में वर्ण विचारधारा तथा अस्पृश्यताओं से प्रभावित हैं, क्योंकि इन्हें निम्न जाति के लोग समझा जाता है। फलतः इन लोगों का प्रभाव भी देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था पर बहुत कम है जैसा कि ऊपर बताया गया है कि इन व्यवस्थाओं पर केवल उन्हीं लोगों का आधिपत्य होता है, जिनका संसाधनों पर कब्जा है (क्योंकि अक्सर 'बाबू' तथा नौकरशाह मनुवादी होते हैं) अक्सर जाति पदसोपान से जुड़े व्यक्ति दलितों का विरोध करते हें तथा दलितों के लिए यह कहा जा सकता है कि– ''यह तुम्हारा दुर्भाग्य है, कि तुम अनुसूचित जाति के हो तथा वह तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम 'जाति के बाहर' एक 'अवर्ण' पैदा हुए हो।''

भारत में कुछ तथाकथित सभ्य लोगों का मानना है, कि दलित समाज के लोग असभ्य एवं गंभीर एवं गंवार होते हैं। परन्तु ये वे नहीं जानते कि क्या दलितों को भी दूसरों की ही भांति जल, बिजली, जनसुविधाएं नहीं चाहिए। बल्कि उनकी प्रवृत्ति यह हो चुकी है कि वे ये मानने लगे हैं कि गरीबों को जितना भी दिया गया है, वे उसमें संतुष्ट रहें तथा उनके आभारी भी रहें। इसी प्रकार दलितों को सदियों से शोषित किया गया हे। अब इन लोगों की शोषित परिस्थिति को ईश्वर प्रदत्त तथा इनके भाग्य के रूप में बताया जाता है। यह एक साधारण सी बात है कि शहर या नगर के जिस भाग में दलितों का निवास होगा, वहां बिजली, पानी, जन सुविधा, स्वच्छता इत्यादि की व्यवस्था दूसरों से ज़्यादा दुर्गत स्थिति में होगी। ग्रामीण क्षेत्रों में दलित समुदायों का निवास स्थल अन्य लोगों से दूरी पर होगा। यही प्रवृत्ति नगरों व शहरों में भी देखने को मिलती है। शहर या गांव में दलितों को वास्तविकता यह है कि वे अपने मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित रहते हैं।

राज्य की भूमिका

संयुक्त राष्ट्र संघ की मानवाधिकार घोषणा में विकास का अधिकार स्वीकार्य है। इसमें यह भी जोर दिया गया है कि विकास एवं प्रगति के लाभों को समान एवं सक्रिय रूप से सभी नागरिकों में वितरित किया जाएगा तथा इसमें मुक्त व अर्थपूर्ण भागीदारी होगी। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि भारत के दलितों को दोनों से ही वंचित रखा गया है। अनुसूचित जातियों के लिए सरकार की अनेकों कल्याणकारी योजनाएं तथा कार्यक्रम समानता के उद्देश्य से निर्मित किए गए हैं। इसमें दो मत नहीं है कि विकास की कुछ झलक देखने को मिलती तो है, परन्तु इससे राजनेता तथा अधिकारियों की उदासीनता ही झलकती है। दुर्भाग्य की बात यह है कि सरकारी अधिकारी विकास की प्रक्रिया में दलितों की भागीदारी को अहमियत ही नहीं देते। और न यही समझते हैं कि दलित इस कार्य के लिए सक्षम हैं। राज्य की यांत्रिकी तथा योजनाएं पितृसत्तामक उपागम को सदैव ग्रहण किए हुए होती हैं। परिणामस्वरूप, दलित समाज सशक्तिकरण से वंचित है। (डाभी 1995)।

स्वयंसेवी समूह भी विकास एवं सशक्तिकरण का एक भाग है। सरकार तथा स्वयंसेवी संस्थानों के प्रयास एवं सहभागिता से अनुसूचित जाति का कुछ हद तक कल्याण हुआ है, ये स्वयंसेवी समूह से मानते हैं कि औरतों की बहुत कम आवश्यकताएं होती हैं। विशेषतया दलित

औरतों की आवश्यकताएं। संगठन एवं प्रशासन को ज्यादा से ज्यादा वित संग्रह करने की समक्षता इनके लिए कोई मायने नहीं रखती। अक्सर यह भी देखा जाता है कि दलितों के विकास के अधिकार को शुभचिंतकों द्वारा कुचला जाता है, क्योंकि ये लोग सरकारी अधिकारी हैं या द्विमुखी एजेंसी, जिनका विश्वास दलितों की भागीदारी तथा विकास में कतई नहीं है जिसके विकास के लिए ये कार्यरत हैं।

राज्य संविधान तथा नागरिकों के अधिकारों की रक्षक है। भारत में जितनी भी मानवाधिकार हनन की स्थितियां है, सभी राज्य व्यवस्था की वजह से हैं–संपूर्ण जनता पर अत्याचार के लिए राज्य सबसे बड़ा दोषी है। लेकिन कभी–कभी नागरिक समाज तथा राज्य के चुप्पी साधने से मानवाधिकार हनन बढ़ जाता है तथा संस्कषति के सामंतवादी तथा पितृसत्तामक आयामों पर प्रभाव डालता है (आलम, 2000, 33)

गैर सरकारी संगठनों की भूमिका तथा नागरिक समाज

पिछले दशक से समस्त विश्व के लोगों का सरकार तथा प्रजातांत्रिक प्रभावकारिता से विश्वास हट चुका है। अब लोगों की निगाहें मानव विकास तथा मानवाधिकार स्थापित करने के लिए लाभरहित विशेषतया गैर सरकारी संगठनों की ओर लगी हैं।

कुछ गैर सरकारी संगठन मानवाधिकार के मुद्दों से जुड़े हुए हैं। दूसरी ओर कुछ संगठन वंचित समाज मुख्यतः अनुसूचित जाति के कल्याण में लगे हुए हैं। गैर सरकारी संगठनों ने भारत में मानवाधिकार के लिए अब तक जो भी काम किए हैं, वे तो सराहनीय है, लेकिन उनसे औरभी उम्मीदें की जा रही हैं। कुछ संगठन मुद्दों को चर्चा का विशय बना तो देते हैं, लेकिन फिर उस पर काम करना छोड़ देते हैं। वास्तव में सरकार, गैर सरकारी संगठन तथा अन्य संस्थाएं लोगों का सशक्तिकरण नहीं करते, बल्कि लोग खुद से सशक्तिकृत होते हैं (मानव विकास रिपोर्ट, 1996)। गैर सरकारी संगठन तथा उनके कार्यकर्ता अपने संगठनों के लिए लोगों को मात्र एक टारगेट ग्रुप (लक्ष्य समूह) के रूप में ही देखते हैं। फलतः उन लोगों के समक्ष प्रश्न आता है– किनके लिए काम किया जाए और किनके लिए नहीं।

यह एक बहस का मुद्दा है कि संगठनों को पर्याप्त संसाधनों के रख–रखाव के लिए लोगों तथा समूहों से संपर्क करना पड़ता है, ताकि संसाधनों पर नियंत्रण स्थापित हो सके। इसलिए संसाधनों की आवश्यकता के लिए संगठनों को वातावरण तथा परिस्थितियों पर निर्भर रहना पड़ता है। अधिकांश गैर सरकारी संगठन संसाधनों के अभाव के कारण दूसरों पर आश्रित हैं। (फेरोलीक 1999) जिसके कारण इस प्रकार के संगठन किसी भी तरह के विवाद और दुश्मनी से अपने आपको दूर रखते हैं। साथ ही साथ, इन्हीं समस्याओं को लेकर संगठन मानवाधिकार के मुद्दों पर उलझना पंसद नहीं करते।

इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है, कि कुछ गैर सरकारी संगठन तथा नागरिक समाज का सदस्य मानवाधिकार के मुद्दों पर काम कर रहे हैं। इस प्रकार के संगठन केवल वित्तीय ही नहीं बल्कि मानव संसाधन की समस्याओं से भी जूझ रहे हैं। सामान्य जाति, जमींदार,

पुलिस, राजनेता एवं कट्टरवादियों के डर से बहुत सारे गैर सरकारी संगठन अपने कार्यकर्ताओं को न तो अच्छी तनख्वाह और ना ही मानवधिकारों से संबंधित सुरक्षा मुहैय्या करा पाते हैं।

राज्य, राजनीति एवं दलितों के मानवाधिकार

तथाकथित विकासशील देशों में मानवाधिकार के कमजोर होने के मुख्य कारण राजनीति और संस्कृति हैं। राजनीति कारणों को कई पहलुओं में देखा जा सकता है। सर्वप्रथम तो यह कि मानवाधिकार को लागू करने और वंचितों से सशक्तिकरण करने में सरकार एवं समाज कितने सक्रिय हैं। सरकार की राजनीतिक मज़बूरी मानवाधिकार एवं मौलिक अधिकार की सीमाएं अधिकतर सरकार पर आधारित रहती हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इसकी घोषणा तो कर दी, किन्तु कार्यकर्ताओं के अभाव में सदस्य देश इसे प्रभावी रूप से लागू करने तथा अनुमोदित करने में समर्थ नहीं हैं।

शक्ति राजनीति की कुंजी है। राजनीति के माध्यम से ही संपूर्ण सिस्टम को संचालित किया जाता है। लेकिन शक्ति बिना जवाबदेही के भ्रष्ट हैं। वास्तव में दलितों के पास न तो शक्ति है और ना ही राजनीति। बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर अपने दलित वर्ग की क्षमता को भली–भांति समझते थे। फलतः वे चाहते थे कि दलितों की समस्या का समाधान राजनीति, पैसे और शक्ति के माध्यम से हो। यदि दलित सत्ता में रहते हैं तो स्वाभाविक रूप से अपने समुदायों की सहायता करेंगे। दलितों को हिन्दू जाति के समक्ष पंचायती राज में भाग लेने तथा हिंसात्मक प्रवृत्तियों का शिकार होने का डर रहता है, इसलिए वे मुश्किल से सत्ता में नजर आते हैं, क्योंकि हिन्दू जाति उन्हें राजनीति में नहीं देख सकती। कई ऐसी घटनांए देखी गयी हैं, जहां कई पंचायतों ने दलित सरपंचों में आस्था नहीं रखी। देश के कई भागों में ऐसी ही प्रवृत्ति देखी गयी। यह भी तर्कपूर्ण मुद्दा है तथा काफी हद तक सच भी है कि – ''राजनीतिक स्तर पर वंचित वर्ग या दलित वर्ग का सत्ता में आने का ध्यान रखा जाता है। केन्द्र या राज्य सरकारें बिना दलित की सहायता से सरकार का गठन नहीं कर सकती या निर्णय निर्माण प्रक्रिया में या फिर बाहर से समर्थन लिए बिना सरकार को संचालित नहीं कर सकती। आज भी दलितों को वोट देने का अधिकार, चुनाव के लिए उम्मीदवार होना और सरकार में शामिल होना तो स्वप्न जैसा ही है और बहुत सी जगहों पर यह सब हिन्दू जातियों द्वारा दलितों का उन्मूलन किया जा रहा है।

भारत के पूर्व उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश का कहना है कि–''इस युग में किसी भी प्रकार के मुद्दे को राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता है। सभी मुद्दों को राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता है। सभी मुद्दे राजनीतिक मुद्दे हैं तथा स्वयं राजीनति झूठ–टालमटोल, मूर्खता, घृणा तथा खंडित मनसूबा लिए हुए हैं''। मानवाधिकार के नाम पर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेकों प्रकार की राजनीति हो रही है, लेकिन मानवाधिकार के लिए नहीं''। बक्सी 2003 का कहना है कि –''अंतर्सरकारी राजनीति कहती है कि परिणामतः संविधान में तथा अंतर्राष्ट्रीय नियम के निरूपण में मानवाधिकारों को एकमात्र लेना ही मानवाधिकारों के उद्भव का स्त्रोत नहीं है'' आगे वे कहते हैं कि मानवाधिकारों पर लिखने वाले

लेखक संघर्षरत हैं तथा अवरूद्ध समुदायों में हैं, जो उनकी मानक स्थिति को घटाकर उन्हें निम्न स्थिति में लाते हैं।

मानवाधिकारों के लिए मूलाधार

कोई जरूरी नहीं कि घोषित की हुई चीज़े व्यवहार में लायी जायें। आज संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकार सार्वभौम घोषणा के बारे में यह कहना तर्कसंगत लगता है। मानवाधिकार संपूर्ण मानव जाति को संबोधित करता है, लेकिन ज्यादातर दलितों की दुर्दशा में अभी तक कोई बदलाव नहीं आया है, यहां यह बात दलित मानवाधिकारों के बारे में कही गयी है। यह सत्य है कि भारतीय संविधान में दलितों के खिलाफ भेदभाव के संदर्भ में संबोधित किया गया है, लेकिन दलितों के साथ भेदभाव के विषय में मानवाधिकार घोषणा प्रपत्र में किसी भी प्रकार की चर्चा नहीं की गई है।

अन्य का यह कहना है कि मानवाधिकारों का उद्‌भव तथा उनका कार्यान्वयन यह बताता है, कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने लोगों के बहुत से वर्गों/समूहों को तथा मुद्‌दों को लिया है तथा उन वर्गों/समूहों के लोगों को जिन्हें विशेष भेदभाव सहन करने पड़ते हैं, वे सभी भेदभाव संयुक्त राष्ट्र ने संबोधित किए हैं। आज करीब 3500 वर्षों से यहां वर्ण–व्यवस्था का प्रचलन है–''भारत के बहुत से लोग आज भी बिना कहे तथा बिना दर्शाए बिना गरिमा तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में जीवन गुजार रहे हें। मौलिक मानवाधिकार तथा मौलिक स्वतंत्रता मात्र प्रपत्रों पर लिखी रह गयी हैं। जो भारत को गंभीरता से इन मुद्‌दों पर पुनः विचार करने के लिए मज़बूर करती हैं''।

अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकारों की यांत्रिकी स्पष्टतया जाति भेदभाव को संबोधित नहीं करती है। जाति भेदभाव वही रोगाणु है, जो दलितों के साथ उन्हें नीच समझकर व्यवहार कराने के लिए इन समुदायों में व्याप्त है तथा जो जातिगत, लैंगिक तथा धार्मिक भेदभाव वाली विचारधाराओं के प्रचलन से दलितों को अन्य लोगों से अलग वर्ग में रखता है। आज दलित प्रतिनिधियों की मांग है कि दूसरी चीज़ों के अलावा जाति तथा कार्य से जुड़े भेदभाव को मिटाने के लिए खासतौर पर दलितों के लिए उपयुक्त विधान का एक अधिनियम होना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार घोषणा में जाति भेदभाव को छोड़ देना भारत में दूसरी तरफ संयुक्त राष्ट्र भागीदारी द्वारा राजनीतिक हित की पुष्टि के कारण लगता है। इससे यह बात प्रकाश में आती है कि दलित मानवाधिकारों के बारे में भी विशेषतौर पर विचार किया जाना चाहिए। इसी कारण इस प्रपत्र में यह नहीं बताया गया है कि दलित मानवाधिकार अन्य मानवाधिकारों से किस प्रकार भिन्न है और न ही उन उद्‌देश्यों को दर्शाया गया है, जो एकमात्र रूप से इन्हें अन्य अधिकारों से अलग करें।

निष्कर्ष

गरिमापूर्ण तथा सम्मानजनक जीवन की आकांक्षा सभी रखते हैं। इसलिए गरिमापूर्ण जीवन के लिए धरातल स्तर से जंग लड़नी पड़ेगी। यह जंग छोटे–छोटे मुद्दों से प्रांरभ करनी होगी। इस जंग की शुरूआत कुएं से पानी निकालने, पंचायत दफ्तर में बैठने, नाई के यहां बाल कटाने, स्कूलों में एक ही बर्तन से पानी पीने, स्कूली बच्चों को दोपहर का खाना दिलाने, महिलाओं द्वारा दूसरे के पाखाना सिर पर उठाने, मुद्दों एवं मरे हुए जानवर को ढोने, दलितों को चप्पल पहनकर निकलने, ऊंची जाति की 'बस्ती' के सामने साईकिल पर चढ़कर जाने, गांव के त्यौहारों में भाग लेने से मना करने, पुलिस तथा प्रशासन द्वारा दलितों की शिकायत दर्ज न करने इत्यादि जैसे मुद्दों से प्रांरभ करनी होगी।

दकियानुसी हिन्दुओं ने वर्ण विचारधारा एवं जाति–प्रथा को शसक्त करने के लिए भगवानकरण एवं संस्कृतिकरण पर जोर दिया है। भारत में मानवाधिकारों के लिए संघर्ष के विरूद्ध नागरिक समाज को वर्ण आधारित विचारधाराओं ने काफी प्रभावित किया है। जब तक लोग आम गरीब जनता, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यकों की समस्याओं के लिए भावुक नहीं होंगे, तब तक समाज में परिवर्तन लाना कठिन काम है। हालांकि यह तर्कसंगत नहीं लगता, कि नियम निर्माता, नियम संरक्षक कभी अपने ही विरूद्ध जाऐगें या अपने दल के हित के विरूद्ध कार्य करेंगे। वस्तुतः परिवर्तन धरातल से लाना होगा, जिसमें गरीब, शोषित, बहिष्कृत, दलित शामिल हों। पिछले दशक से दलित सृदृढ़ीकरण ने बहुत बल प्राप्त कर लिया है। तथा विस्तारित हुआ है, इसलिए ये कारक तथा प्रयास इस सुदृढ़ीकरण को तोड़ सकते हैं।

गरीबों तथा बहिष्कृतों का कोई प्रयास, संघर्ष तथा कोई सुदृढ़ीकरण नहीं है या है भी तो बहुत कम है या निरर्थक है। इनकी आवाज़े, विरोध, अवरोध चुनौतियां तथा सुदृढ़ीकरण सभी बहुत तुच्छ हैं यानी वर्षा में बूंद के समान हैं। इसलिए दलितों तथा बहिश्कृत लोगों का प्रयास केवल सरकार विरोधी ही नहीं बल्कि नागरिक समाज विरोधी होना चाहिए, जहां मानवाधिकारों से उन्हें वंचित किया जाता है, समुदायों में तथा लोगों में उन्हें शामिल होने से रोका जाता है तथा उन्हें मानव होने के अधिकार से बाहर रखा जाता है, जिससे कि वे मानव प्राणी की भांति जी सके।

संदर्भ सूची

1 आलम, अफताब (एडीटर) 2000, ह्मूमन राइट्स इन इंडियाः इश्यूज एंड चैलेंज, देहलीः राज पब्लिकेशन।

2 बक्सी, उपेन्द्र 1994, इन ह्मूमन रांग्स एंड ह्मूमन राइट्स–अनकनवेंशलन एस्सेज, न्यू देहलीः हर आनंद पब्लिकेशन्स।

3 2002, दि फ्यूचर ऑफ ह्मूमन राइट्स, देहलीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

4 2002, 'ऑर्गेनाइजेशनल फैक्टर्स इनफ्लुएन्सिुंग दि इफेकिटवनेस ऑफ एन.जी.ओस एंड ग्रासरूट्स ऑर्गेनाइजेशंस इन गुजरातः पी–एच.डी थीसिस, अहमदाबादः गुजरात यूनिवर्सिटी।

5 फ्रोइलिक, केरेन ए. 1999, 'डाइवर्सिफिकेशन ऑफ रिवेन्यू स्ट्रोटेजीजः इवोल्विंग रिसॉर्स डिपेन्डेंस इन नॉनप्रोफिट ऑर्गेनाइजेशंस' इन नॉनप्रोफिट एंड वोलॅन्टरी सेक्टर क्वार्टरली, वोल्यूम 28, नं. 3, सितम्बर 1999.

6 अय्यर, कृष्णा वी.आर. 2002 2–10, 'दलित, चुमेन एंड इन्वॉयरनमेंट्रस–क्राइसेस इस्क्लेशन एंड रिजॉल्यूशन ।